मनोरंजन का सौंदर्यशास्त्र

श्रीकांत सिंह*

मनोरंजन यदि शरीर है तो सौन्दर्य उसकी आत्मा। दोनों का सम्बंध कला से है। कला का सामान्य अर्थ है भावना की गोचर अर्थात मूर्त उपकरणों के माध्यम से अभिव्यक्ति। भावना के स्पर्श से ही विचार समृद्ध होता है, कल्पना सक्रिय होती है और उसी के स्पर्श से ही कला में प्रीति तत्व का समावेश होता है जिसे चिंतको ने स्मरणीय अर्थ कहा है। मनोरंजन में हमें सौन्दर्यानुभूति होती है। कलाकार मनोरंजन के लिए काल्पनिक सर्जना का सहारा लेता है। इसके लिए सौन्दर्य आवश्यक है। सौन्दर्य के अभाव में कलाकार कितना भी काल्पनिक सृजन करे, उसकी सृजनात्मकता आम लोगों को आकर्षित करने में पूर्णतया असफल ही रहेगी। इसीलिए मनोरंजन से सौन्दर्य को अलग करना सम्भव नहीं है। सौन्दर्यानुभूति अन्य अनुभूतियों से भिन्न है। अन्तर्निहित आनंद की भावना सौन्दर्यानुभूति की सबसे बडी विशेषता है। आज मीडिया द्वारा जितने भी मनोरंजनपरक कार्यक्रमों का प्रदर्शन किया जाता है उसकी प्रशंसा उसके सौन्दर्य के ही कारण होती है। सौन्दर्य के अभाव में मनोरंजनतत्व समाप्त हो जाता है और वह कार्यक्रम नीरस बन जाता है। सौन्दर्य की प्रशंसा, उसके प्रति पाठको-दर्शको एवश्रोताओं का सम्मोहन ही इसका असीमित लक्षण है। सौन्दर्यानुभूति में भाव पक्ष की प्रधानता होती है। किसी भी मनोरंजन परक कार्यक्रम को देखते ही पाठकों दर्शकों की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया शुरु हो जाती है और वह भावनाओं में बहने लगता है। कल्पनायुक्त उड़ान भरने लगता है।

मनोरंजन मानवीय संवेदना की क्रिया है, वह व्यक्ति को संवेदनशीलता की देन है। मानव की मानवीयता को जाग्रत और परिष्कृत करने का परिणाम भी है। यह संवेदनशील रचनाकार की जीवन और जगत के प्रति रागात्मक और वैचारिक क्रिया की अनुभूति है ऐसी अनुभूति में सौन्दर्य की भी अनुभूति होती है। सौन्दर्य के अभाव में मनोरंजन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। वैसे मनोरंजन का सौन्दर्यशास्त्र ऐन्द्रीय अनुभूतियों से प्राप्त ज्ञान का माध्यम न होकर ऐन्द्रीय माध्यम से केवल रसास्वादन तक ही सीमित रह गया है। मनोरंजन का सौन्दर्यशास्त्र चाक्षुष एवं श्रवण इन्द्रियों पर आधारित होता है। सेन्ट टायस ने कहा है कि सौन्दर्य वह है जो देखे जाने पर सुखानुभूति कराये। यह सुखानुभूति प्रेक्षक को मिलती है लेकिन किस प्रक्रिया से यह सुखानुभूति सम्भव हुई ? सुखानुभूति केवल देखने भर से नहीं होती सुखानुभूति इच्छापूर्ति से होती है। इच्छाएं संयोग नहीं हैं, वे आदतों से नियमित होती हैं। मनुष्य की इच्छाएं उनके अनुभवों का परिणाम होती है। सौन्दर्य की उसकी धारणा उसकी स्मृतियों एवं अनुभवों से निर्मित होती है। मनोरंजन के सौन्दर्यशास्त्र का अध्ययन करने के लिए हमें मुख्य रुप से तीन बातों पर विशेष ध्यान देना पड़ता है :-

1. रूप सौन्दर्य, 2. रंग सौन्दर्य, 3. अभिव्यक्ति का सौन्दर्य

1. **रूप सौन्दर्यः–** मनोरंजन का रुप सौन्दर्य साहित्य के रुप सौन्दर्य से प्रायः भिन्न होता है। इसे हम इस प्रकार समझ सकते है। नर नारी के सौन्दर्य प्रसाधन में वस्त्रालंकार का बार बार उल्लेख मिलता है। अलंकार रुप यौवन सम्पदा की वृद्धि करते है। अतएव ये सौन्दर्य के प्रभावी उपकरण है। सौन्दर्यानुभूति और मनोरंजन परस्पर सम्बंधित है। इसे मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखने पर स्पष्ट होता है कि मनुष्य कुछ चीजें आनंद के लिए या अपनी खुशी एवं सुख के लिए करता है जिसका दैनन्दिन जीवन की आवश्यकताओं से कोई सम्बंध नहीं होता। सुन्दर वस्तुओं को देखकर उनके प्रति सम्मोहन होना, आकर्षण होना स्वाभाविक है।
2. **रंग सौन्दर्य –** कलाकार किसी सुन्दर प्राकृतिक दृश्य को देखकर प्रफुल्लित हो उठता है उसे रंग और तूलिका से रंगफलक पर उतारने को ललायित हो जाता है। ऐसा वह सौन्दर्य के प्रति स्वाभाविक आकर्षण होने के कारण ही करता है। उसे ऐसा करने में मजा आता है आनंद आता है, खुशी होती है स्वांतः सुखाय करता है परंतु उद्देश्य परान्तः सुखाय भी होता है और वह चाहता है कि दूसरे लोग भी उस सौन्दर्य का रसास्वादन करें।
3. **अभिव्यक्ति का सौन्दर्य –** अभिव्यक्ति भी सौन्दर्य का ही एक रुप है। मनोरंजन में प्रस्तुतिकरण की शैली महत्वपूर्ण तत्व है। कोई गायक गाना गाता है तो वह साथ ही साथ यह भी चाहता है कि दूसरे लोग भी उसके गाने का रसयान कर आनंदित हों। पौराणिक गाथाओं रामलीला, कृष्णलीला, नाटक, नौटंकी, हास्य, व्यंग्य, कवि सम्मेलन, हास्य भरे किस्से, अकबर और बीरबल, लाल बुझक्कड और मनोरंजनकारी अभिव्यक्तियॉ प्राचीन समय से ही हमारा मनोरंजन कर रही हैं आज टेलीविजन चैनलों पर तो मनोरंजन से परिपूर्ण कार्यक्रमों की भरमार है। लोकांचलों में कठपुतलियों के तमाशे एवं देवी देवताओं, भूत-पिशाचों राक्षस

*विभागाध्यक्ष, दृश्य एवं श्रव्य विभाग, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय

राक्षसियों के रुप में कहीं कहीं तो मुखौटें तो कहीं स्वांग रुप में नृत्य परम्पराएँ आदि मानव मस्तिष्क का मनोरंजन करते है। इन मुखौटों का एक अपना आनंद होता है। ये विविध रुपों में लोगो का मनोरंजन करते रहते है।

मनोरंजन के मुख्यतः तीन आयाम होते है-

1. सृजन, 2. अभिव्यक्ति, 3. सम्प्रेषण

इन तीनों आयामों को समझने के लिए आवश्यक है कि हम मनोरंजन में सौन्दर्यानुभूति के तत्वों को समझें।

मनोरंजन के सौन्दर्यपरक तत्व

मनोरंजन कार्यक्रमों में विषय वस्तु के अनुरुप सौन्दर्य उत्पादन हेतु तत्वों की संख्या घटती बढती रहती है। जैसे परिवार में सौन्दर्यबोध खेल, फिल्म और सीरियल तथा उपन्यास की अपेक्षा भिन्न होते है। यहाँ हम कतिपय ऐसे तत्वों पर प्रकाश डाल रहे हैं जिनता अनुप्रयोग प्रायः हमें देखने को मिलता है जो निम्नलिखित हैं।

रस– रस के बिना मनोरंजन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। जैसे बिना औषधि (हल्दी मसाला आदि) के सम्प्रेषण के व्यंजन सुस्वादु नहीं बन सकता, इसी प्रकार रस एवं भाव परस्पर सम्मिश्रित होकर मनोरंजन या अस्वाद के साधन बनते है। अनके अभाव में मनोरंजन कार्यक्रम सम्भव ही नहीं है। तभी तो कहा गया है।

व्यंजनौषाधि संदोत्रो यथादुन्नं स्वादुतां नयतें
"एव भाषा रसाश्चैव भाषयन्ति परस्परम"

मनोरंजन में जिस आनंद की अनुभूति होती है उसे रस कहते हैं। इस प्रकार हम कह सकते है कि मनोरंजन का आनंद ही रस है। यही मनोरंजन का परम लक्ष्य है। मनोरंजन का सौन्दर्य उसी आनंद की अनुभूति कराता है। आचार्य भरत मुनि ने रस की परिभाषा नाट्यशास्त्र में इस प्रकार दिया है "विभावानुभावव्यभिचारि संयोगा उसनिष्पक्ति"अर्थात् विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से ही रस की निष्पत्ति होती है। रस के निम्नलिखित अवयव होते हैं :-

स्थायी भाव – मानव हृदय में सदैव स्थिर रहने वाले मनोविकारों को ही स्थायी भाव कहा जाता है, जिस प्रकार वीणा के तारों में स्वर सुप्तावस्था में रहतें हैं, जैसे ही वे वादक की अंगुली का स्पर्श पाते हैं मधुर ध्वनि के साथ बज उठते हैं। इसी प्रकार स्थायी भाव भी मानव मस्तिष्क में सुप्तावस्था में रहतें हैं, किन्तु मनोरंजन की अनुभूति होते ही वे रस की अनुभूति करा देते हैं। भारतीय आचार्यो ने नौ रसों एवं उसके स्थायी भावों का विवरण इस प्रकार दिया है :-

रस	**स्थायी भाव**
शृंगार	रति
वीर	उत्साह
करुण	शोक
रौद्र	क्रोध
हास्य	हास
वीभत्स	घृणा
भयानक	भय
अद्भुत	विस्मय
शांत	निर्वेद

शरीर की भाषा :– मनोरंजन का सौन्दर्यशास्त्र काफी हद तक दर्शकों की मनः स्थिति पर निर्भर करता है। इसके लिए उसे प्रस्तोता के शरीर की भाषा से परिचित होना आवश्यक है। शरीर की भाषा सामान्यता मनोरंजन परक कार्यक्रमों में प्रस्तुतिकरण के तौर तरीकों पर निर्भर करती है। मनोरंजन कार्यक्रमों में प्रस्तोता की भाव भंगिमाएं, मुखमण्डल की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ, दृष्टि तथा मानव अन्तः क्रिया के पराभाषाई रुप सम्मिलित होते है। इसे हम महाकवि बिहारी के दोहे से इस प्रकार समझ सकते हैं :-

कहति, नटति, रीझति, मिलति, खिलति, लजियात।
भरे भौन में होत है, नैनन ही सों बात।।

प्रस्तुतिकरण शैली :– यह सौन्दर्यशास्त्र का महत्वपूर्ण तत्व है। प्रस्तोता की अभिव्यक्ति की वास्तविक स्वरुप उसके प्रस्तुतिकरण की शैली पर निर्भर करता है। मनोरंजन का संवाद संदेश कितना ही महत्वपूर्ण क्यों न हो यदि उसका प्रस्तुतिकरण ठीक नहीं तो वह व्यर्थ हो जाता है। प्रस्तुतिकरण की शैली का ही परिणाम है कि फिल्मी दुनिया में अभिनेता अभिनेत्रियां अपने कला का प्रदर्शन कर पाते है। जिस नायक नायिका का प्रस्तुतिकरण अच्छा होता है उसका बाजार मूल्य उतना ही अधिक होता है। यही स्थिति खेल में भी हो गई है, विज्ञापन की दुनिया के लिए तो यह अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्रस्तुतिकरण में प्रस्तोता का बॉडी लेंग्वेज, टोन, पिच, वेश भूषा, रंग रुप, सज्जा, गेस्चर, पोस्चर आदि सम्मिलित होते है। सौन्दर्यशास्त्र एक कला है, अतएव प्रस्तोता की पूरी कला का परिचय उसके प्रस्तुतिकरण में झलकता है।

मनोरंजन के स्वरुप

मनोरंजन के कई स्वरुप होते है। वैसे यह काफी हद तक दृष्टा की मनोवृत्ति पर भी निर्भर करता है। एक ही कार्यक्रम किसी के लिए मनोरंजनकारी है तो अन्य के लिए बोरियत पैदा करने वाला भी हो सकता है। वैसे मनोरंजन के महत्वपूर्ण स्वरुप निम्नलिखित हैं :

नाटक

यह नाट्य शब्द नट (नमनार्थक धातु) से निष्पादित है जहाँ पात्र अपने स्वभाव को त्यागकर परभाव ग्रहण करें तो वह नाट्य रुप हो जाता है। ऋष्टाध्यायी में नटानां कर्म आश्रयों का नाट्यम कहकर नटों के धर्म या चेष्टाओं के अतिरिक्त उनके सम्पादन कर्म का प्रतिपादक ग्रन्थ भी नाट्य बतलाया गया है। वैसे यह मनोरंजन का प्रमुख स्वरुप है। नाटकों में सौन्दर्य उत्पन्न करने के लिए वेश भूषा, स्वर, हास्य, परिहास, गीत, संगीत संवाद आदि का संयोजन किया जाता है।

नृत्य

आचार्य धनन्जय ने इसकी उत्पत्ति नृत धातु से मानी है जो भावाप्रीत होता है वह नृत्य है (भावश्रितं नृत्यं) अर्थात जिसमें किसी पदार्थ को अभिव्यक्त किया जाता है। इसमें रस भाव का विनियोजन रहता है।

प्रहसन

यह हास्य रस प्राय: रंजना प्रधान रुपक है। प्रहसन में किसी लोकोचारी या लोकनिन्दित के जीवन को प्रदर्शित किया जाता है। भरत मुनि के अनुसार प्रहसन में विट, वेश्याजन, धूर्त, कुलटा जैसे पात्रों को निर्लज्ज वेशभूषा, जाति, स्थिति एवं ऐसी मुखाकृति को प्रदर्शित किया जाता है जो जनदृष्टि में हास्यास्पद हो। दर्शक ऐसे हास्यापद पात्रों की वेश भूषा को देखकर सौन्दर्यनुभूति का अनुभव कराता है उसे भरपूर मनोरंजन की अनुभूति होती है।

संगीत

इसीप्रकार भाषा, वीथी, लोकगीत, कहानी, उपन्यास, साहित्य, फिल्म, धारावाहिक, कवि सम्मेलन, कार्टून जैसे अनेक खेल कार्यक्रम हैं जो लोगो का मनोरंजन करते है। यदि उनके कार्यक्रमों में हास्य व्यंग्य रस की प्रधानता हो तो वे सोने में सुहागा बन जाते हैं। मनोरंजन के कार्यक्रम सामान्यतया दृष्टा श्रोता या पाठक की दृष्टि पर भी निर्भर करता है। एक ही कार्यक्रम किसी का मनोरंजन करता है तो वही कार्यक्रम किसी को बोर कर देता है। यह समय स्थान एवं परिस्थितियों पर काफी हद तक निर्भर करता है। आचार्य अभिनवगुप्त ने कहा है कि जैसे पुष्ठता शरीर का गुण है परंतु यही स्त्री के स्तनों में रहें तो वह स्तन का लक्षण बन जाता है और वहीं यदि कटि में रहें तो सुन्दरी का कुलक्षण बन जाता है। इसीप्रकार एक रूप से कही जाने वाली वस्तु उसी क्रम में रसोचित विभाव के रुप में प्रकट हुई तो वह लक्षण है।

दृश्य कला में जो स्थान सिमिट्री का है वहीं स्थान संगीत में लय का है। सुप्रसिद्ध दार्शनिक शायेनहावर का कथन है कि सौन्दर्य की अनुभूति न तो ऐन्द्रीय माध्यम से न वैज्ञानिक स्वर से और न तर्क से बल्कि आत्मबोध द्वारा होती है। उनके द्वारा कला को एक मदमस्त करने वाला पेय माना गया है। सौन्दर्य के रसायन से व्यक्ति के सारे कष्ट जिन्दगी का सारा बोझ तुरंत हल्का हो जाता है। सारा मानसिक बोझ समाप्त हो जाता है। उपनिषदों में तो संगीत के अस्वाद को दिव्यानंद रुप माना गया है। संगीत रत्नाकर में संगीत के द्वारा चराचर के आनंदमग्न होने की बात अत्यंत प्रबल शब्दों में की गई है।

अलंकार एवं सौन्दर्य

मनोरंजन में अलंकार का भी विशेष महत्व होता है। अलंकार शब्द का अर्थ होता हैं आभूषण जो वस्तु को सुन्दर बनाने का साधन होता है। इस प्रकार जिन साधनों से मनोरंजनपरक कार्यक्रमों से सौन्दर्य में वृद्धि होती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रुप, गुण, क्रिया का अधिक तीव्रता से अनुभव कराने में सहायक उक्ति अलंकार है। मनोरंजनपरक सृजनात्मकता में शब्द और अर्थ में सौन्दर्य उत्पन्न करने वाली वर्णन शैली अलंकार कहलाती है। फिल्मों एवं टेलीविजन कार्यक्रमों में रुप सौन्दर्य (मेकअप) दर्शकों को आकर्षित करने के लिए ही किया जाता है। रुप सौन्दर्य से नायक नायिका एवं ग्रन्थ अभिनयकर्ता सुन्दर दिखाई देते हैं। पात्र के अनुरुप वस्त्रों का चयन जहाँ मनोरंजन कार्यक्रमों में वास्तविकता का बोध कराने में सफल होते हैं। अलंकार मनोरंजन कार्यक्रमों को विशेष प्रभाव उत्पन्न करने की शक्ति भी बढाते हैं। यद्यपि अलंकारों का प्रयोग सौन्दर्य को नष्ट भी कर देता है। अतएवं अलंकारो का समुचित प्रयोग ही सौन्दर्य वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है।

सृजनात्मकता

मनोरंजन कार्यक्रमों का सौन्दर्यशास्त्र काफी हद तक उनके सृजनकर्ता पर निर्भर करता है। सृजनकर्ता ही सृजन प्रक्रिया के दौरान इसका आनन्द उठा सकता है। क्योंकि विचारों और संवेगों के जितने छायारंग मनोंरजन में होते है उन्हें केवल वहीं जानता है। कला का पूर्ण आनन्द वहीं व्यक्ति उठा सकता है जो अनुभव समृद्ध हो

संयोजन

यह मनोरंजन की मुख्य प्रक्रिया है। इसके लिए स्मृति और अनुभव आवश्यक होता है। यदि हम किसी कलाकार के स्वर में स्वर मिलाना चाहते हैं तो हमारे पास संयोजन के अनुभव का विशाल भण्डार होना चाहिए तभी हम उतना ही सुन्दर ढंग से संयोजन कर सकते है जितना की कलाकार की अपेक्षा होती है।

निष्कर्ष

अन्त में हम कह सकते हैं कि मनोरंजन मानवीय संवेदन की क्रिया है। व्यक्ति चेतना की संवेदनशीलता को प्रभावी रुप देने के लिए सौन्दर्य आवश्यक होता है। सौन्दर्य तथ्यों का वह पहलू है जो इन्द्रियों द्वारा लक्ष्यक की चिन्तनात्मशक्ति को संदर्भित किए जाने के पश्चात् ऐसी शक्ति रखता है कि वे लक्ष्यक के संचित अनुभव से प्रतिक्रियाओं को जागृत कर सकें। मनोरंजन सम्प्रेषण कला है। यह एक ऐसी कला है जो किसी साध्य का साधन न होकर स्वयं साध्य होता है। आनंदानुभूति साधन नहीं है वरन साध्य है। सौन्दर्यनुभूति में आनंद तत्व के अर्न्तभाव का स्पष्ट आभास मिलता है। सौन्दर्य की अनुभूति अलौकिक होती है। यह प्रीतिकार होने के कारण कल्याणकारी होती है।

सौन्दर्य का केन्द्रीय लक्षण यह होता है कि वह किसी साध्य का साधन न होकर स्वयं साध्य होता है। इसका प्राण तत्व इसकी अनुपयोगिता में निहित होता है। जीवन का प्रत्येक मूल्य वांछनीय होता है क्योकि यह अपेक्षाकृत अधिक वांछनीय मूल्यों की ओर ले जाता है। ऐसी स्थिति में मात्र सौन्दर्य ही ऐसा मूल्य है जो रुप से वांछनीय होता है और इसकी वांछनीयता का अनुमान केवल सृजन चेतना द्वारा ही लगाया जा सकता है।